सामयिक प्रकाशन

समाज और इतिहास

नवीन शृंखला

10

औपनिवेशिक भारत में प्रतिबन्धित एवं विवादित सिनेमा (1913–1935)

नरेन्द्र शुक्ल

जूनियर फेलो, नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय
2014

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय सामयिक प्रकाशन

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय

© नरेन्द्र शुक्ल, 2014
सर्वाधिकार सुरक्षित। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भी अंश का दोबारा प्रयोग, पुनरोत्पादन किसी भी रुप में नहीं किया जा सकता। इसमें व्यक्त विचार, अर्थनिर्धारण तथा निष्कर्ष पूर्णतः लेखक के हैं और किसी भी तरह, पूर्णरुपेण अथवा अंशतः, नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय के विचारों को नहीं दर्शाते।

प्रकाशक

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय
तीन मूर्ति भवन
नई दिल्ली–110011
ई.मेल : ddnehrumemorial@gmail.com

आईएसबीएन : 978-93-83650-49-1

मूल्य रुपये 100/- ; यूएस $ 10

पृष्ठ सज्जा और मुद्रण : ए.डी. प्रिंट स्टूडिओ, 1749 बी/6, गोविन्द पुरी, एक्सटेंशन कालकाजी, नई दिल्ली–110019. ई.मेल : studio.adprint@gmail.com

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय सामयिक प्रकाशन

औपनिवेशिक भारत में प्रतिबन्धित एवं विवादित सिनेमा* (1913–1935)

नरेन्द्र शुक्ल

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में (1895–96) कला के एक नये आयाम की तरह *'सिनेमा'* विश्व के समक्ष प्रस्तुत हुआ। यह अपने उत्पादन, यथार्थ को प्रस्तुत करने के तरीकों तथा अपनी तकनीक में विशिष्ट था। पूरे विश्व में जहाँ–जहाँ *सिनेमा* पहुंच रहा था, इसने अपनी ओर एक बड़ा दर्शक वर्ग आकर्षित किया था। एरिक हॉब्सबॉम के अनुसार, इस असाधारण उपलब्धि का मुख्य कारण, फिल्मों के निर्माताओं की रूचि जनसाधारण के लिए लाभदायक मनोरंजन प्रस्तुत करने के अतिरिक्त किसी बात में न होना थी।[1] किन्तु सिनेमा उद्योग के विकास का दूसरा पक्ष यह था कि सिनेमा जिस दौर में अपने विकास के लिये प्रयत्नशील था वह उत्कट साम्राज्यवाद के लिये जाना जाता है। सच यह है कि साम्राज्यवाद के केन्द्र स्थलों पर उत्पन्न होने वाला सिनेमा, अपनी उत्पत्ति के साथ ही, साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक दृष्टिकोण से सम्बद्ध होने के लिए अभिशप्त था। क्योंकि, विशेषकर मूक युग (Silent Period) की सर्वाधिक फिल्में, ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका व जर्मनी में बन रही थीं, जो उस काल के अग्रणी साम्राज्यवादी देश थे तथा जिनका स्पष्ट उद्देश्य अपने उपनिवेशों में साम्राज्यवादी विचारों के लिये प्रशंसापरक माहौल का निर्माण करना था।[2]

*14 अक्टूबर 2014 को नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली में दिए गए व्याख्यान का संशोधित संस्करण।

[1] एरिक हॉब्सबॉम, अनुवादक–प्रकाश दीक्षित, पृ. 319–320, 2009.

[2] जीनिन वुड्स, पृ. 22, 2011.

दूसरी तरफ, भारत जैसे देशों में प्रेस से निकलने वाला साहित्य, जिसमें समाचार पत्रों में देश की समकालीन स्थिति का यथार्थपरक विवरण, देश प्रेम से ओतप्रोत कवितायें, साम्राज्यवाद विरोधी कवितायें, देश के लिए सर्वस्व त्याग और बलिदान का उदाहरण प्रस्तुत करने वाले क्रान्तिकारियों की प्रशंसा परक लेख, देश के भीतर राष्ट्रवाद की एक ऐसी अन्तःतरंग प्रस्तुत कर रहे थे जो साम्राज्यवादी चेहरे को बेनकाब कर देने की मंशा रखते थे। ऐसे में साम्राज्यवादी देशों के औपनिवेशिक हितों और उपनिवेश विरोधी हितों में टकराव अवश्यम्भावी था। यह वह जमीनी हकीकत थी, जहां दोनों ही वैचारिक ध्रुव सिनेमा को अपने प्रचार का माध्यम बना सकते थे। किन्तु यह मुकाबला गैर बराबरी का था, क्योंकि साम्राज्यवादी देशों के हाथ में कानून और दण्ड की अपरिमित शक्ति थी, जिसका उपयोग कर वे अपने उपनिवेशों में अपने हितों की विरोधी विचारधारा को कुचल सकते थे। हालांकि इनके अपने देशों में स्वयं इनके लिये भी जनता के अधिकारों को कुचलना इतना आसान नहीं था, कारण कि, जनता ने व्यवस्था के साथ एक लम्बे संघर्ष के बाद इन्हें अपने लिये अर्जित किया था और वे इसे पुनः खोने के लिये तैयार नहीं थे। फिर भी इंग्लैण्ड जैसे देश में स्थानीय अधिकारियों के प्रयासों से फिल्मों के प्रदर्शन के समय 'अग्निकांड' जैसी बड़ी दुर्घटना के बहाने 1 जनवरी 1910 को "सिनेमेटोग्राफ एक्ट 1909'' लागू कर दिया गया।

इससे परेशान होकर ब्रिटेन के फिल्म उद्योग ने आत्म अनुशासन हेतु नवम्बर 1917 की 'ब्रिटिश बोर्ड ऑफ फिल्म सेन्सर्स'' नामक एक संस्था बना ली। यह संस्था, मूलतः दो सिद्धान्तों पर फिल्म का परीक्षण करती थी। (1) नग्नता (2) ईसा के किसी भी प्रकार के चित्रण की मनाही। हालांकि, सरकार ने इस संस्था को मान्यता दी थी, यही नहीं, 1917 में, सिनेमा इन्क्वायरी कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार बाद में इस संस्था के अध्यक्ष टी.पी.ओ'कॉनर के निर्णय, फिल्म उद्योग एवं स्थानीय अधिकारियों, दोनों को मान्य करने होते थे, फिर भी कुछ बदलाव के साथ 1909 का सिनेमेटोग्राफ एक्ट 1952 तक चलता रहा। इसी प्रकार अन्य साम्राज्यवादी देशों मे भी सिनेमा पर प्रतिबंध की परिस्थितियों का विश्लेषण करने पर एक महत्वपूर्ण चीज जो लक्षित की जा सकती है, वह है प्रतिबन्धकारी कानूनों के साथ नागरिकों या उद्योग संगठनों द्वारा

आत्मानुशासन के लिये बनाये गये संगठनों का राज्य द्वारा स्वीकारना। ऐसी संस्थायें राज्य और जनता, राज्य और उद्योग के बीच पुल का काम करती थीं। जिससे न केवल व्यापार और उद्योग की वृद्धि के लिये उचित वातावरण का निर्माण होता था बल्कि शासक और शासित के मध्य सहज संवाद से राज्य में शांति और विकास का वातावरण तैयार होता था।[3] किन्तु ब्रिटेन जैसे साम्राज्यवादी देश अपने उपनिवेशों में जनता को इतनी छूट देने को तैयार नहीं थे क्योंकि, जब किसी साम्राज्यवादी देश को अपने मातृदेश के हितों और किसी उपनिवेश के हितों में से चुनना होता था तो आवश्यक तौर पर अपने मातृदेश के हितों का चुनाव करता, और इसी के साथ प्रतिबन्ध और शोषण का एक नया चक्र शुरू हो जाता था।

भारत में, 7 जुलाई 1896 को फ्रांस के ल्यूमिए बन्धुओं द्वारा मुम्बई के वाटसन्स होटल में पहली बार सिनेमा प्रविधि का प्रदर्शन किया गया। ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य का एक अंग होने के कारण यूरोपीय फोटोग्राफरों एवं फिल्मकारों की रूचि भारत में तो थी ही, साथ ही ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन का भारत पर प्रभाव और अपनी शक्ति को विश्व के समक्ष प्रदर्शित करने के अवसर को भी सिनेमा के माध्यम में वह खोना नहीं चाहते थे। ऐसे में आश्चर्य नहीं कि भारत में दिखाई जाने वाली प्रारम्भिक फिल्मों में *जुबली ऑफ क्वीन विक्टोरिया, दिल्ली दरबार ऑफ लॉर्ड कर्जन (1903), रॉयल विजिट टु कलकत्ता (1906), एट द कनवोकेशन (1906), द फाउण्डेशन स्टोन सेरीमनी ऑफ विक्टोरिया मेमोरियल हाल (1906), जार्ज पंचम और महारानी का बम्बई आगमन, प्रोक्लेमेशन परेड इन रेस कोर्स (1912)* थीं, जिन्हें बनाने वालों में भारतीय और यूरोपीय दोनों थे। दूसरी तरफ भारतीय फिल्मकारों और फोटोग्राफरों में कुछ ऐसे भी लोग थे जो राष्ट्रवादी राजनैतिक गतिविधियों में रुचि दर्शा रहे थे, और विभिन्न गतिविधियों को कैमरे में कैद कर रहे थे। हरिश्चन्द्र भटवदकर, हीरालाल सेन तथा ज्योतिष सरकार उनमें से मुख्य थे। हरिश्चन्द्र भटवदकर द्वारा फिल्म बनाने के लिये चुने गये विषय से राष्ट्रीय गौरव के क्षणों को कैमरे में कैद कर लेने के उनके भाव को समझा जा सकता है। 1901 को एक भारतीय

[3] अरुणा वासुदेव, पृ. 6, 1978.

विद्यार्थी रघुनाथ पी.परांजपे, जो कैम्ब्रिज से गणित विषय में विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण होकर भारत लौट रहे थे, बम्बई में उनके आगमन पर उनका एक *'हीरो'* की तरह स्वागत किया गया। भटवदकर द्वारा इस समारोह का फिल्मांकन किया गया तथा दो दिन पश्चात इसका सार्वजनिक प्रदर्शन किया गया। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी द्वारा बुलाई गई एक सभा का फिल्मांकन *''ग्रेट बंगाल पार्टीशन मूवमेन्ट मीटिंग ऐण्ड प्रोसेशन''* शीर्षक से किया।[4] इसी प्रकार की एक छोटी फिल्म बालगंगाधर तिलक के कलकत्ता आगमन पर बनाई गई।[5] ये फिल्में छोटी जरूर थीं किन्तु इनका प्रभाव राजनैतिक दृष्टि से व्यापक था। भारत में फीचर फिल्मों का प्रारम्भ 1913 में दादा साहब फाल्के की फिल्म *राजा हरिश्चन्द्र* से माना जाता है। 1913 से 1917 तक दादा साहब फाल्के ने करीब 23 फिल्मों का निर्माण किया जिसमें *राजा हरिश्चन्द्र* के अतिरिक्त *भस्मासुर मोहिनी, सत्यवान सावित्री, लंकादहन* प्रमुख हैं। बाद में उन्होंने *'कृष्ण जन्म* तथा *कालिया मर्दन* का निर्माण किया।[6] यह अवश्य ही विचारणीय हो सकता है कि, ऐसे समय में जब ब्रिटिश साम्राज्य प्रथम विश्वयुद्ध में संघर्षरत था तथा भारत में स्वशासन की मांग जोरों पर थी तब भारतीय फिल्मकार भारतीय पौराणिक कथानकों में से साहस और संघर्ष के चरित्रों का आख्यान फिल्मों के रूप में आम जनमानस के सन्मुख प्रस्तुत कर रहे थे। इस बात को एक अन्य फिल्म *''रिलीफ ऑफ लखनऊ''* के उदाहरण से समझा जा सकता है। इस फिल्म का जिक्र भारत में ब्रिटिश सरकार के सचिव ए. व्हीलर द्वारा संयुक्त प्रांत के मुख्य सचिव को 13 फरवरी 1915 को लिखे एक पत्र में आता है। 1912 में अमेरिकी कम्पनी, एडीसन द्वारा निर्मित और सर्ले जे. डाउले द्वारा निर्देशित इस फिल्म का विषय 1857 के विद्रोह से सम्बन्धित था, जो विद्रोह के समय अंग्रेज महिलाओं, बच्चों के कत्ले आम से शुरू होकर विद्रोहियों की हार पर खत्म होती थी। इस फिल्म का प्रदर्शन बम्बई प्रेसीडेन्सी में हो चुका था, और सरकार यह विश्वास करती थी कि, इसे पंजाब और उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत में दिखाया जा चुका था। मि. व्हीलर इस तरह की फिल्में दिखाये जाने से न केवल चिन्तित थे बल्कि विभिन्न

[4] बी. डी. गर्ग, पृ. 7–15, 2007.

[5] गुलजार, निहलानी, चटर्जी, पृ. 28, 2003.

[6] महेन्द्र मित्तल, प . 32, 1975.

प्रान्तीय सरकारों से इनकी रोकथाम के उपाय जानने का भी प्रयास कर रहे थे। इन्हीं पत्राचारों में संयुक्त प्रान्त के इन्सपेक्टर जनरल ऑफ पुलिस डगलस एम. स्ट्रेट 7/8 जून 1915 को जानकारी दी थी कि, बिहार एवं उड़ीसा के कटक में एक ऐसी फिल्म के प्रदर्शन की रिपोर्ट प्राप्त हुई है जिसमें 'तुर्क सेना, गुरखा सेना के विरुद्ध लड़ने के लिये प्रस्थान' कर रही है।[7] ऐसे में जब विश्वयुद्ध गहराता जा रहा था, गदर आन्दोलन ठण्डा नहीं पड़ा था, और देश में स्वशासन की आवाज बुलन्द हो रही थी, सिनेमा और प्रदर्शनों के प्रति ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन का चिन्तित होना स्वाभाविक था। इस स्थिति से निपटने के लिये ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ने दो दिशाओं में कार्य करना निश्चित किया। प्रथम, सरकार का मानना था कि भारत के भीतर और विश्व के अन्य भागों में यह संदेश जाना चाहिए कि, ब्रिटिश शक्ति आज भी सर्वशक्तिशाली है, और उसके उपनिवेश विश्वयुद्ध में उसके साथ खड़े हैं। इसके लिये ऐसी फिल्मों को प्रोत्साहित करना निश्चित किया गया जो ब्रिटेन के पक्ष को मजबूत करती थीं। ऐसी फिल्में मूलतः दो तरह की होती थीं, पहली युद्ध विषयक फिल्में तथा दूसरी भारत जैसे उपनिवेशों में ब्रिटिश शासन का प्रभाव दर्शाने वाली फिल्में। युद्ध विषयक फिल्मों को ब्रिटिश 'वॉर आफिस' की देखरेख में *'फिल्म फ्रॉम द फ्रंट'* श्रेणी के अन्तर्गत रखा जाता था जिसके चयन और प्रदर्शन की देखरेख *सिनेमा कमेटी* की एक उप समिति *'टॉपिकल कमेटी'* करती थी।[8] इसे विशेष तौर पर इस कार्य के लिये 1915 में बनाया गया था। चार्ल्स अर्बन जो कि स्वयं भी फिल्म निर्माण में सक्रिय थे, ने इस *'टॉपिकल कमेटी'* के अध्यक्ष बनने के बाद दो महत्वपूर्ण युद्ध विषयक फिल्मों का निर्माण किया, यह थीं – *ब्रिटेन प्रिपेयर्ड* (1915) तथा *द बैटल ऑफ सोमे* (1916)। फिल्म *ब्रिटेन प्रिपेयर्ड* के पहले आधे भाग में दिखाया गया था कि, किस प्रकार ब्रिटिश लोग सेना में भर्ती हो रहे हैं, शस्त्र बन रहे हैं, किंग जार्ज पंचम सेना को आगे से नेतृत्व करता दिखाते हुये सेना का निरीक्षण करने का दृश्य, एक जर्मन *'ब्लॉक हाउस'* का विनाश इस भाग का मुख्य आकर्षण था। फिल्म के दूसरे भाग में *ब्रिटिश नेवी* को उत्तरी

[7] सामान्य प्रशासन विभाग,1915, पत्रावली सं0–152, राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ।
[8] होम, पोलिटिकल, पार्ट बी, वर्ष–जून 1916, पत्रावली सं0–416–420, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

समुद्र की रक्षा करते हुए दिखाया गया था। अर्बन की दूसरी फिल्म *'द बैटल ऑफ सोमे'* को भी उत्कृष्ट 'वार फिल्म' का दर्जा दिया जाता है। इसमें जर्मनी के विरुद्ध ब्रिटेन के आक्रामक युद्ध के दृश्य हैं जिसमें बहुत से लोग मारे गये जिनमें कुछ भारतीय भी थे। ऐसी प्रचारात्मक फिल्मों का भारत में प्रदर्शन औपनिवेशिक दृष्टिकोण से बहुत महत्व का था। इन प्रचारात्मक फिल्मों का असर साफ तौर पर दिखाई पड़ा जब एक हफ्ते के भीतर भारत से लगभग 2,90,000 (दो लाख नब्बे हजार) पूरी तरह से तैयार और हथियारों से लैस सेना फ्रांस और मिस्र के लिये रास्ते पर थी जिनमें 2,10,000 भारतीय थे।[9]

वहीं दूसरी तरफ, प्रचारात्मक फिल्मों की श्रृंखला में *'द इंडियन एम्पायर'* दूसरी तरह की फिल्म थी जिसे बनाने का खर्च खुद 'इण्डिया आफिस' ने दिया था। एच. सी. रेमण्ड द्वारा भारत आकर भारत में बनाई गई, ग्यारह भाग में बटी इस फिल्म में भारतीय सांस्कृतिक आर्थिक जीवन के विभिन्न अंगों के साथ शिक्षा, सैन्य तैयारी, स्वास्थ्य आदि पर औपनिवेशिक शासन के कारण आये प्रभावों को कैमरे में कैद किया गया था।[10] जाहिर है, ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा उपनिवेशों में अपनी शक्ति और प्रशासन की सफलता का प्रचार, न केवल स्वयं के शासन को बनाये रखने की तर्क संगतता को आधार प्रदान करती थी बल्कि यह विश्वयुद्ध जैसे नाजुक समय में उपनिवेशों का साथ पाने की उसकी सामयिक जरूरत भी थी।

किन्तु ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन की समस्यायें केवल प्रचारात्मक अभियान से हल होने वाली नहीं थी, उसे उन तत्वों को कुचलना भी था जो देश में उपनिवेश विरोधी विचारों के प्रचार में संलग्न थे, और सिनेमा को अपने प्रचार का माध्यम बनाना चाहते थे। इस सम्बन्ध में 2 दिसम्बर 1914 को गृह सचिव ने एक पत्र द्वारा सिनेमा पर नियन्त्रण से सम्बन्धित वर्तमान स्थिति से भारत सचिव को अवगत कराया था तथा 13 फरवरी 1915 का मि.एच.व्हीलर, सचिव, भारत में ब्रिटिश सरकार

[9] बी. डी. गर्ग, पृ. 23–26, 2007.

[10] होम, पोलिटिकल, पार्ट बी, जनवरी 1918, पत्रावली सं0–46–47, एवं के. डब्ल्यू., राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली।

द्वारा देश के विभिन्न प्रान्तों को परिपत्र जारी कर सिनेमा प्रदर्शनों पर नियन्त्रण हेतु सुझाव मांगा गया था। इस परिपत्र में व्हीलर ने तीन फिल्मों का उदाहरण देते हुए, सिनेमा द्वारा तीन अलग–अलग तरह की समस्याओं के प्रति चिन्ता जाहिर की थी। जिसमे *रिलीफ ऑफ लखनऊ* का जिक्र राजनैतिक दृष्टि से, फिल्म *'आजिम'* जिसमे मुहम्मद साहब पर टिप्पणी के कारण साम्प्रदायिक समस्या के लिहाज से तथा अमेरिकी फिल्म *'द एडवेंचर ऑफ कैथलीन'* का जिक्र नस्लीय भेदभाव की दृष्टि से किया गया था।[11] इस तीसरी श्रेणी में विदेशी फिल्मों में दिखाए जाने वाले पश्चिमी जीवन, पर्दे पर पश्चिमी महिलाओं के पहनावे एवं चरित्र आदि चिंताए भी शामिल थी। यह सीधे तौर पर श्वेत नस्ल की गरिमा से जुड़ा प्रश्न था। आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि देश की विभिन्न प्रान्तीय सरकारें सिनेमा पर अभिवेचन के पक्ष में थे। सरकार की ओर से 5 सितम्बर 1917 को सर विलयम विन्सेन्ट ने विधान परिषद में 'सिनेमेटोग्राफ बिल' प्रस्तुत किया। उन्होंने 'सिनेमेटोग्राफ बिल' प्रस्तुत करते हुए कहा कि, ''अधिकतर सभ्य देशों ने मनोरंजन की विधाओं विशेषकर प्रदर्शन की इस विधा हेतु वर्तमान कानूनों में सुधार की आवश्यकता को महसूस किया है। इस हेतु दो बिन्दु ध्यातव्य हैं –

(1) दर्शकों की सुरक्षा।

(2) आपत्तिजनक फिल्मों को प्रदर्शन से रोका जाना।

यह अत्यन्त आवश्यक है कि ऐसी फिल्में जो अभद्र एवं अनुचित हैं, और धार्मिक व नस्लीय तौर पर नुकसान पहुंचा सकती हैं उनके प्रदर्शन के विरुद्ध सुरक्षात्मक शक्ति प्राप्त हो।... यदि युद्ध की व्यस्तता न होती तो यह विधेयक परिषद में पहले ही प्रस्तुत कर दिया जाता।"[12]

विधान परिषद के भारतीय सदस्यों ने विधेयक का इस आधार पर विरोध किया कि, विधेयक में अनुचित या 'आपत्तिजनक' शब्द की कोई व्याख्या नहीं है, जिससे इस विधेयक का अपने व्यवहारिक रूप में

[11] सामान्य प्रशासन विभाग, 1915, पत्रावली सं0–152, राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ।
[12] अरूणा वासुदेव, पृ.12, 1978.

अनावश्यक रूप से कठोर हो जाने की सम्भावना है, और ऐसी कोई भी फिल्म जिसका विषय अभिवेचन अधिकारी को न भाये उसको प्रतिबन्धित कर दिया जायेगा। विधान परिषद के भारतीय सदस्य खपर्डे ने प्रयास किया कि प्रभावित व्यक्तियों को प्रान्तीय सरकारों के पास अपील की बजाय कोर्ट में अपील का अधिकार प्राप्त हो जाय। प्रभावित व्यक्ति को कोर्ट में अपील का अधिकार न देना एक प्रकार से उनकी स्वतंत्रता को सीमित करना होगा। उनके इस सुझाव का विरोध करते हुए सर विलियम विन्सेन्ट ने कहा कि, "वास्तव में स्वतंत्रता कहीं से सीमित हो ही नहीं रही है, जहां तक मैं जानता हूं, ऐसी अपील का अधिकार इंग्लैण्ड तक में नहीं हैं यही नहीं, हमारे कई ऐसे कानून हैं, उदाहरण के तौर पर अधिकारी शहरों में सार्वजनिक जुलूसों पर नियन्त्रण लगाते हैं, मैं नहीं जानता कि ऐसे किसी भी मामले में किसी को हाईकोर्ट में अपील का अधिकार दिया गया हो। अगर हम ऐसे मामलों को बिना किसी ठोस सबूत के कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत करेंगे तो हम केवल कोर्ट को एक असंभव स्थिति में ही डालेंगे और अगर हम ठोस सबूत का इन्तजार करेंगे तब तक इतनी देर हो चुकी होगी कि, उसका कोई अर्थ नहीं रह जायेगा।[13] बहरहाल, जैसा कि ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन पहले ही चाहता था, और जो युद्ध की व्यस्तता के चलते न कर सका था, सिनेमेटोग्राफ एक्ट 1918 पारित कर दिया गया। 1919 में इसे संशोधित भी किया गया। इस एक्ट के अनुच्छेदों में 'सिनेमेटोग्राफ' के अन्तर्गत ऐसे किसी भी यन्त्र को जो चलचित्र अथवा चित्रों की शृंखला को प्रदर्शित कर सके, रखा गया। विधेयक के अनुच्छेद तीन में, 50 व्यक्ति से कम दर्शक होने पर एक्ट के लागू न होने वाले नियम को हटाकर व्यवस्था दी गई कि, कोई भी व्यक्ति इस एक्ट के प्रावधानों के अन्तर्गत दी गई, अनुमति के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान पर सिनेमा का प्रदर्शन नहीं कर सकता था। इस एक्ट में लाइसेंस प्रदान करने का अधिकार जिला मजिस्ट्रेट को दिया गया। जबकि प्रेसीडेन्सी टाउन या रंगून में यह अधिकार पुलिस कमिश्नर के पास था (अनुच्छेद 4)। इस एक्ट के कानूनों का उल्लंघन करने पर, चाहे वह फिल्म का स्वामी हो, अथवा प्रदर्शन के स्थान का स्वामी या किरायेदार हो, उसे अधिकतम 1000 रूपये दण्ड से दण्डित किया जा सकता था तथा दुबारा

[13] अरूणा वासुदेव, पृ.13, 1978.

उल्लंघन करने पर उल्लंघन की तिथि से 100 रूपये प्रतिदिन की दर से अर्थदण्ड लगना था। यही नहीं फिल्म को जब्त भी किया जा सकता था अनु. 6 (1) व (2)। इस एक्ट के अनुच्छेद 7(1) में स्थानीय सरकारों को गवर्नर जनरल और उसकी समिति की ओर से यह शक्ति दी गई थी कि वे अधिसूचना जारी करके फिल्मों की जांच और प्रमाणन के लिए एक बोर्ड का गठन कर सकते थे। व्यवस्था दी गई कि यदि यह बोर्ड किसी फिल्म को प्रदर्शन योग्य नहीं पाता है तो बोर्ड फिल्म के आवेदनकर्ता को सूचित कर देगा। आवेदनकर्ता इस निर्णय के विरुद्ध स्थानीय सरकार से अपील कर सकता था। स्थानीय सरकार उस अपील को रद्द कर अधिसूचना जारी कर फिल्म को अप्रमाणित घोषित कर सकती था अनु. 7–3 (a) व (b)। यही नहीं स्थानीय सरकार को शक्ति थी कि वह स्वयं भी संज्ञान में लेकर सीधे अपने प्रान्त के लिये किसी फिल्म को 'अप्रमाणित' अधिसूचित कर सकता थी अनु. 7 (7)।[14]

इस सिनेमेट्रोग्राफ एक्ट 1918 के अन्तर्गत, 1920 तक चार सेन्सर बोर्ड, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और रंगून में अस्तित्व में आ गये। ये बोर्ड न केवल अपने–अपने क्षेत्राधिकार में भारतीय फिल्मों की जांच व प्रमाणन का कार्य करते थे बल्कि, भारत में बाहर से आने वाली विदेशी फिल्मों की जांच और प्रमाणन का कार्य करते थे।[15] इन बोर्डों के पास पहले से ब्रिटिश सेंसर बोर्ड द्वारा किसी फिल्म की जांच के लिये प्रयोग में लाये जाने वाले आधारों का जो उदाहरण था, लगता है कि भारतीय बोर्डो ने उन आधारों को लगभग ज्यों का त्यों अपना लिया था। इसलिये भी भारतीय बोर्डों द्वारा किसी फिल्म की जांच के आधारों को समझने के लिये ब्रिटिश सेंसर बोर्ड के जांच के आधारों की पड़ताल ठीक होगी।[16]

ब्रिटिश सेंसर बोर्ड के आधार क्षेत्र काफी व्यापक थे जो एक साथ कई लक्ष्यों पर प्रहार करते थे। यदि इनका मोटे तौर पर वर्गीकरण किया जाय तो हमें कम से कम छः वर्ग प्राप्त होंगे।

---

[14] हैन्ड बुक ऑफ इण्डियन फिल्म इन्डस्ट्री, पृ. 416–419, 1949.

[15] अरूणा वासुदेव, पृ. 15–16, 1978.

[16] होम, पोलिटिकल, 1926, पत्रावली सं0–168/III, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

(1) धार्मिक (2) राजनैतिक (3) नैतिक (4) नस्लीय (5) हिंसा (6) पूंजीवाद विरोध यह वही छः वर्ग थे जिनको भारतीय सेंसर बोर्डों ने सिद्धान्त की तरह अपनाया।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की दृष्टि से 1919 से 1922 के वर्ष रौलेट एक्ट, जलियांवाला बाग और असहयोग आन्दोलन के वर्ष थे। भारतीय राजनैतिक क्षितिज पर गांधीजी के आगमन के बाद भारतीय राजनैतिक आकांक्षाएं गांधी के साथ जुड़ गयी थी। भारत में मुद्रित साहित्य और नाटक विधा तो प्रतिबंध का दंश काफी समय से झेल रही थी। किन्तु वर्ष 1921 में कोहिनूर फिल्म कम्पनी द्वारा निर्मित और, कांजीभाई राठौर द्वारा निर्देशित *'भक्त विदुर'* पहली भारतीय फिल्म थी जिसे प्रतिबन्ध का सामना करना पड़ा।[17] इस फिल्म में मुख्य पात्र 'विदुर' को सांकेतिक रूप से महात्मा गांधी की तरह दर्शाया गया था। हालांकि मूल कथा महाभारत के कथानक के अनुसार चलती है, किन्तु खद्दर का कुर्ता और टोपी पहनने वाले मुख्य पात्र विदुर के वक्तव्य समकालीन राजनीति में हस्तक्षेप करते लगते हैं। इस पर टिप्पणी करते हुए बम्बई का एक स्थानीय अधिकारी कहता है कि, ''यह न केवल सरकार के विरुद्ध घृणा उत्पन्न करती है बल्कि यहाँ जनता में असहयोग को भी प्रेरित करती है।''[18] फिल्म को जिला मजिस्ट्रेट कराची[19] मद्रास और सिंध[20] द्वारा प्रतिबन्धित कर दिया गया। प्रतिबन्धित करते हुए बोर्ड ने कहा कि, ''हम जानते हैं कि आप क्या कर रहे हैं, ये विदुर नहीं हैं, ये गांधी जी है, हम इसकी अनुमति नहीं दे सकते हैं।''[21] दूसरी तरफ, इंग्लैण्ड में लोग अब भी भारत में सिनेमा और उस पर नियन्त्रण की वर्तमान स्थिति से, संतुष्ट नहीं थे। इस बारे न केवल संसद में प्रश्न पूछे गये बल्कि अखबारों में अनेक लेख और गणमान्य व्यक्तियों द्वारा सरकार को पत्र भी लिखे गये। इन सबको संज्ञान में लेते हुए भारत में ब्रिटिश सरकार ने सिनेमा विशेषज्ञ डब्लू. इवान्स, को भारतीय सिनेमा उद्योग के सर्वेक्षण का कार्य सौंपा। अपनी रिपोर्ट में इवान्स ने

[17] तेजस्विनी गन्ती, पृ. 206, 2004.

[18] अरूणा वासुदेव, पृ. 25, 1978.

[19] जीनेन वुड्स, पृ. 98, 2011.

[20] तेजस्विनी गन्ती, पृ. 206, 2004.

[21] जीनेन वुड्स, पृ. 98, 2011.

लिखा कि, भारत में कार्य कर रहे, भारतीय बोर्ड वास्तव में, 'कमजोर और अनुभवहीन' हैं। उन्होंने सुझाव दिया कि, भारत में ब्रिटिश सरकार को, प्रान्तीय सरकारों से अपने क्षेत्रों में अभिवेचन को और कड़ा तथा तर्क संगत बनाने के लिये कहना चाहिए जो अभी तक नाममात्र ही है।[22]

वर्ष 1922 में भारत में ब्रिटिश सरकार ने भारत में सिनेमा पर नियन्त्रण और इस हेतु विधेयक के संबन्ध में एक रिपोर्ट जारी करते हुए अपने विभिन्न अधिकारियों एवं प्रान्तीय सरकारों से सुझाव आमंत्रित किये। इस रिपोर्ट के अनुसार, भारत में सिनेमा प्रदर्शन पर नियन्त्रण सेंसर बोर्डो द्वारा किया जा रहा था किन्तु 'अनुचित फिल्मों' को बनने से नही रोका जा पा रहा था। कारण कि, अनुचित फिल्मों के निर्माण (Production) से रोकने के लिए अभी तक कोई कानून नहीं बन पाया था। रिपोर्ट में यह भी बताया गया था कि, पंजाब और बर्मा को छोड़कर बाकी सभी प्रान्तों ने अनुचित फिल्मों को बनते समय ही रोकने के लिये कानून लाने का समर्थन किया था। गृह विभाग ने अपना मत देते स्पष्ट किया कि, उसके अनुसार यह विधेयक अखिल भारतीय होना चाहिए तथा इसमें निम्नलिखित प्रावधान होने चाहिए–

1. प्रत्येक फिल्म निर्माता, चाहे वह व्यक्ति हो या संस्था उसका पंजीकरण आवश्यक हो।

2. ऐसे प्रत्येक निर्माता को लाइसेंस प्राप्त करना होगा।

3. बिना पंजीकरण या लाइसेन्स के फिल्म निर्मित करने पर जुर्माना होना चाहिए।

4. जिला मजिस्ट्रेट या उसके द्वारा नामित मजिस्ट्रेट को फिल्म निर्माण स्थल की जांच का अधिकार हो।

5. बिना लाइसेंस के फिल्मों का आयात बन्द हो तथा प्रत्येक आयातित फिल्म, जांच व प्रमाणन बोर्ड द्वारा प्रमाणित हो।

[22] अरूणा वासुदेव, पृ. 42, 1978.

6. अनुचित फिल्मों की जब्ती और उन्हें समाप्त कर देने की शक्ति प्राप्त हो।

गृह विभाग के इस प्रस्ताव का प्रान्तों और अधिकारियों ने दो कारणों से विरोध किया। पहला तो यह कि अधिकारी एकमत से सिनेमा के सम्बन्ध में अखिल भारतीय कानून बनाने के पक्ष में नहीं थे, दूसरे इस प्रस्ताव के अनुच्छेद 5 का, जिसमें विदेशी फिल्मों से सम्बन्धित प्रतिबन्ध के नियम थे, उससे अधिकारी सहमत नही थे।[23]

अनुच्छेद 5 के व्यापक विरोध को देखते हुए बाद में इसे बदलकर इस प्रकार कर दिया गया कि, ''ऐसी फिल्म का निर्माण, जिसका प्रदर्शन अपराध हो, उसका निर्माण अपराध माना जायेगा''।[24] हालांकि इस बदलाव के बावजूद, अखिल भारतीय कानून के मुद्दे पर ये सुझाव परिणिति को प्राप्त नहीं हो सके फिर भी, इस बहाने अधिकारीगण आपत्तिजनक विशेषकर राजद्रोही विचारों के प्रतिपादन वाली फिल्मों के निर्माण के प्रति जो चिन्ता जाहिर करते हैं वह ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन की दृष्टि से गलत नहीं थी। 1926 में मराठी–हिन्दी निर्देशक भाल जी पन्ढारकर द्वारा *'वन्देमातरम आश्रम'* शीर्षक से एक फिल्म बनाई गई।[25] पन्ढारकर की फिल्म *वन्देमातरम आश्रम,* राष्ट्रवादी नेताओं लाला लाजपत राय और मदन मोहन मालवीय के 'हिन्दू आदर्शो' से प्रभावित थी। फिल्म में क्लर्क मानसिकता को बढ़ावा देने वाली पश्चिमी शिक्षा नीति का विरोध और भारतीय शिक्षा पद्धति का समर्थन किया गया था। इसे औपनिवेशिक सरकार के लिये खतरे के तौर पर देखते हुए प्रतिबन्धित कर दिया गया।[26] 1926 में ही सिनेमेटोग्राफ प्रतिबन्ध से सम्बन्धित एक और मामला सामने आया, जिसने औपनिवेशिक प्रशासन की बड़ी किरकिरी की। हुआ यह था कि, बिहार के गिरीडीह में 6 अगस्त 1926 को एक खद्दर प्रदर्शनी लगाई गई। इस प्रदर्शनी में बाबू राजेन्द्र प्रसाद का उद्घाटन भाषण रखा गया। इस भाषण को राजेन्द्र प्रसाद 'मैजिक लैन्टर्न' की

[23] होम, पोलिटिकल, 1922 ,पत्रावली सं0–147 / VII, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
[24] होम, पोलिटिकल, 1922, वही, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
[25] राजाध्यक्ष, विलर्मेन, पृ. 19, 1999.
[26] जीनेन वुड्स, पृ. 104, 2011.

स्लाइड्स पर्दे पर दिखाते हुए बोलना चाहते थे। स्थानीय प्रशासन ने 'मैजिक लैन्टर्न' को सिनेमेटोग्राफ एक्ट के अन्तर्गत मानते हुए धारा 144 के अन्तर्गत प्रतिबन्धित कर दिया। राजेन्द्र प्रसाद को जब इस प्रतिबन्ध का पता चला तो उन्होंने स्थानीय प्रशासन को पत्र लिखकर कहा कि, 'मैजिक लैन्टर्न' सिनेमेटोग्राफ एक्ट के अन्तर्गत नहीं आता है। चूंकि आपका आदेश ही गलत तथ्य पर आधारित है इसलिये वह इसे मानने के लिए बाध्य नहीं है। टकराव की स्थिति से बचने के लिये हजारीबाग के डिप्टी कमिश्नर ने सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ पुलिस को सलाह दी कि, सम्भवतः 'मैजिक लैन्टर्न' सिनेमेटोग्राफ एक्ट के अन्तर्गत नहीं आता है, इसलिये सम्मानजनक तरीके से इस मामले से निकल जाना ही ठीक होगा। इनकी सलाह को मानते हुए स्थानीय पुलिस ने प्रदर्शन की जाने वाली चार स्लाइड्स पर आपत्ति की, जिनमें से दो को प्रदर्शन से हटा लेने पर राजेन्द्र प्रसाद के भाषण से रोक हटा ली गई।[27]

1926–27 में केन्द्रीय सेंसर बोर्ड का मुद्दा एक बार फिर उछला। इसके पीछे कई कारण थे। 1920 से 1926 तक ऐसा कई बार हो चुका था कि, एक फिल्म जिसे किसी सेंसर बोर्ड ने प्रमाण पत्र दे दिया हो, उसी फिल्म को दूसरे प्रान्तों ने आपत्तिजनक मानते हुए प्रतिबन्धित कर दिया था। कारण भारत की सांस्कृतिक विविधता थी। उदाहरण के तौर पर 1923 में मदन थिएटर लि. ने *लाइफ ऑफ क्राइस्ट* की तर्ज पर महात्मा बुद्ध के जीवन पर आधारित फिल्म *'लाइफ ऑफ लॉर्ड बुद्धा'* का निर्माण किया। इस फिल्म को कलकत्ता बोर्ड ने प्रमाण पत्र दिया था। भारत के विभिन्न प्रान्तों में इसका प्रदर्शन किया गया। सब कुछ सामान्य था किन्तु बर्मा में प्रदर्शन के दौरान वहां के लोगों ने इस फिल्म पर आपत्ति की। इसका कारण था कि, फिल्म में बुद्ध को 'आम मानव' की तरह दिखाया गया था। बर्मा में फिल्म को प्रतिबन्धित कर दिया गया था। केन्द्रीय सेंसर बोर्ड की वकालत करने वालों का दूसरा तर्क यह था कि, कई बार एक प्रान्त में प्रतिबन्धित फिल्म की सूचना दूसरे प्रान्त तक नहीं पहुंच पाती है। ऐसे में जब तक प्रशासन को पता चल पाता है, उसके कई प्रदर्शन हो चुके होते

[27] पोलिटिकल स्पेशल, 1926, पत्रावली सं0–257, राज्य अभिलेखागार, बिहार।

हैं।[28] कई मंचों से इस तरह के प्रश्नों और सुझावों को उठता देख भारत में ब्रिटिश सरकार की ओर से होम मेम्बर जे. क्रेरर ने 14 सितम्बर 1927 को विधान परिषद में एक जांच समिति का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसे भारतीय सिनेमा से सम्बन्धित निम्न संभावनाओं को तलाशना था–

1. भारत में सिनेमा सेंसरशिप के स्तर में सुधार

2. भारतीय फिल्म उद्योग का विकास

3. इम्पीरियल कॉन्फ्रेस, 1926 में पारित प्रस्ताव के अनुसार भारत में 'साम्राज्य फिल्मों' के प्रदर्शन के प्रोत्साहन हेतु कदम की आवश्यकता।

इस समिति के लिये प्रस्ताव हेतु विधान परिषद की बहस में भारतीय सदस्यों के रूप में लाला लाजपत राय, मुहम्मद यामीन खान, बी. दास, ए. रंगस्वामी आयंगर, सी. दुरैस्वामी आयंगर आदि ने भाग लिया। भारतीय सदस्यों ने जांच समिति का तो समर्थन किया किन्तु सरकार को भारत में 'साम्राज्य फिल्मों' के प्रदर्शन के प्रोत्साहन सम्बन्धी बिन्दु पर काफी विरोध सहना पड़ा। सी. दुरैस्वामी आयंगर ने कहा कि, ''केवल ब्रिटिश साम्राज्य की फिल्मों के प्रदर्शन पर जोर देने की बजाय, अगर ऐसा ही प्रयास जापान, चीन, रूस, जर्मनी की फिल्मों के लिये भी किया जाय तो भारतीय जनता उसका भी स्वागत करेगी।'' लाला लाजपत राय ने प्रश्न उठाया कि 'अमेरिकन फिल्मों को जानबूझ कर दिखाने से क्यों रोका जा रहा है'? उन्होंने यह भी आरोप लगाया कि, ''ब्रिटिश फिल्मों में राजा और नवाबों के हरम को गलत तरीके से दिखाया जा रहा है, मुझे लगता है कि ब्रिटिश साम्राज्य की फिल्म को दिखाने को बढ़ावा देना केवल ब्रिटिश फिल्म उद्योग को बढ़ावा देने के लिये है। प्रस्ताव से ये बिन्दु हटाया जाना चाहिए''।[29]

अन्ततः एक लम्बी बहस के पश्चात 6 अक्टूबर 1927 को भारतीय सिनेमा पर 'सिनेमा समिति' का प्रस्ताव पारित कर दिया गया। मद्रास

[28] होम, पोलिटिकल, 1925, पत्रावली सं0–207, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

[29] होम, पोलिटिकल, 1927, पत्रावली सं0–48/VIII, एवं के. डब्लू. राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

उच्च न्यायालय के वकील दीवान बहादुर टी. रंगचेरियर को इस समिति का अध्यक्ष बनाया गया। एक अध्यक्ष और 5 अन्य सदस्यों वाली इस समिति में दो अन्य भारतीय सदस्यों के रूप मे खान बहादुर सर इब्राहीम हारून तथा के. सी. नियोगी थे। यूरोपीय सदस्य के रूप में जे. डी. क्रॉफोर्ड, ए. एम. ग्रीन, तथा जे. कोटमैन थे। जी. हूपर को इस समिति का सचिव बनाया गया। भारतीय सदस्यो के विरोध को देखते हुए ब्रिटिश साम्राज्य की फिल्मों के प्रोत्साहन के साथ भारतीय फिल्मों के प्रोत्साहन की बात भी जोड़ी गई।[30]

इस समिति की पहली बैठक 18.10.1927 को शिमला में हुई, जहाँ इन्होने अपना कार्य प्रारूप तैयार किया। यहीं एक प्रश्नावली तैयार की गई, जिससे फिल्म से जुड़े लोगों से जानकारी हासिल की जानी थी। समिति ने अपने कार्य के दौरान देश के लगभग 12 शहरों, बम्बई, कराची, लाहौर, पेशावर, लखनऊ, कलकत्ता, मद्रास, रंगून, मांडला, जमशेदपुर, नागपुर और दिल्ली का दौरा किया और इस बीच इसने ऐसी 4325 प्रश्नावली (Questionnaires) जारी की। जिनमें से उसे 320 के उत्तर प्राप्त हुए। ऐसी अनेक प्रश्नावली उत्तरों, साक्षात्कारों व प्रमाणों के आधार पर समिति ने मई 1928 मे अपनी रिपोर्ट पूरी कर ली। 223 पृष्ठ की यह रिपोर्ट दस मुख्य अध्यायों में बटी हुई थी, जिसमें सातवें अध्याय में सामाजिक प्रत्ययों एवं नियन्त्रण के प्रश्न को लिया गया था। हालांकि, समिति ने नैतिक हानि, धार्मिक भावनाओं को आहत करने वाली, साम्प्रदायिक या नस्लीय भावना भड़काने का प्रयास करने वाली फिल्म के प्रदशर्नों पर नियन्त्रण के लिये अभिवेचन (सेंसरशिप) को निश्चित और आवश्यक माना किन्तु अभिवेचन और प्रतिबन्ध के प्रति उसका रवैय्या काफी तर्क संगत था। समिति का मानना था कि, फिल्मों मे अनुचित पहनावे, प्रणय संबन्धी दृश्यो पर प्रतिबन्ध इसलिये आवश्यक नहीं है कि यह यूरोपियन हितों को नुकसान पहुचाता है या विशेष तौर पर भारतीय नैतिकता के लिये खतरनाक है, बल्कि यह इसलिये आवश्यक है कि, यह सभी समुदाय के किशोरों की नैतिकता को नुकसान पंहुचाता है। दूसरी तरफ समिति ने इस बात को अविश्वसनीय बताया कि ऐतिहासिक फिल्में जो केवल घटनाओं का, प्रदर्शन करती हैं, जैसे *'फ्रेंच रिवोल्यूशन'*,

[30] सोमेश्वर भौमिक, परिशिष्ट ए, 1995.

किसी दर्शक को कानून द्वारा स्थापित सरकार को उखाड़ फेंकने के लिये प्रेरित कर सकती हैं। किसी फिल्म को केवल इसलिये प्रतिबन्धित कर दिया जाय क्योंकि वह ऐतिहासिक या समकालीन प्रश्न पर विचार करती है, ठीक नहीं है।[31] इस प्रकार, अभिवेचन के लिये एक केन्द्रीय बोर्ड का समर्थन करते हुए रंगचेरियर समिति ने उन सभी प्रश्नों, धार्मिक, नस्लीय प्रश्न, अश्लीलता, और ऐतिहासिक तथा समकालीन विषयों को छूने वाली फिल्मों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट किये जिनके आधार पर अब तक विभिन्न प्रान्तीय सेन्सर बोर्डों ने अनेक फिल्मों को अभिवेचित अथवा प्रतिबन्धित किया था। यहां तक कि जिन फिल्मों को किसी न किसी बोर्ड ने प्रदर्शन हेतु प्रमाण पत्र दिया था, उन्हें भी विभिन्न प्रान्तीय सरकारों द्वारा अप्रमाणिक घोषित किया गया था। 1924–1928 के मध्य बम्बई सरकार द्वारा ऐसी 8 फिल्में, बंगाल द्वारा 3 फिल्में, बर्मा द्वारा 9 फिल्में, पंजाब द्वारा 36 फिल्में, संयुक्त प्रांत द्वारा 29 फिल्में, मध्य प्रान्त व बरार द्वारा 19 फिल्में, बिहार एवं उडीसा द्वारा 37 फिल्में, अप्रमाणिक घोषित की गई।[32] भारत में फिल्मों पर प्रतिबन्ध की इतनी बडी संख्या की तुलना अगर समकालीन ब्रिटेन और आस्ट्रेलिया बोर्ड से करें तब एक अलग दृश्य दिखाई देगा। ब्रिटिश सेंसर बोर्ड ने अपने पास 1919 में प्रमाणन के लिये आयी फिल्मों में केवल 28 को अस्वीकृत (Reject) किया, 1921 में अस्वीकृत फिल्मों की संख्या केवल 6 थी, तथा 1923 मे यह 10 थी।[33] वहीं आस्ट्रेलिया सेंसर बोर्ड ने 1925 में 68 तथा 1926 में 87 फिल्मों को अस्वीकृत किया था।[34]

इस प्रकार, ब्रिटेन द्वारा, खुद उसके अपने देश में और उसके उपनिवेशों में, सेन्सर बोर्डों और सरकारों द्वारा फिल्मों पर लगाये जा रहे प्रतिबन्धों में 'प्रतिबन्ध की दोहरी नीति' को देखते हुए, फिल्मों के प्रतिबन्ध के पीछे साम्राज्यिक हितों की पूर्ति का कोण तलाशना कठिन नहीं हैं। ब्रिटेन द्वारा फिल्मों के माध्यम से 'प्रतिबन्ध की राजनीति' द्वारा साम्राज्यिक हितों के पोषण की नीति तब और भी उजागर हो जाती है, जब एक तरफ तो वह साम्राज्यिक हितों के चलते अपने उपनिवेशों

[31] सोमेश्वर भौमिक, पृ. 150–151, 1995.

[32] अरुणा वासुदेव, पृ. 24, 1978.

[33] होम, पोलिटिकल, 1926, पत्रावली सं0–168/III, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

[34] होम, पोलिटिकल, 1928, पत्रावली सं0–80/XXI, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

में तथाकथित 'ब्रिटिश विरोधी प्रचारात्मक फिल्मों' के प्रतिबन्ध का हिमायती दिखता है वहीं दूसरी तरफ ब्रिटिश साम्राज्य का पक्ष पोषण करने वाली फिल्मों के निर्माण और प्रसार में सहयोग करता दिखता है। उदाहरण के लिए, 9 फरवरी 1923 को लिखे, फ्लेचर्स के पत्र से पता चलता है कि सरकार, लॉवेल थॉमस को भारत पर ''रोमांटिक हिन्दुस्तान'' शीर्षक से एक यात्रावृत्त (Travelogue) बनाने के लिये 2000 पौण्ड की धनराशि अग्रिम देने को तैयार हो गयी थी।[35]

लगभग इसी समय ब्रिटिश सरकार को *'इण्डिया टुडे'* शीर्षक से वह फिल्म प्राप्त हुई जो हर लिहाज से ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार की 'विदेशों में भारत का प्रचार' नीति के अर्न्तगत बिलकुल ठीक बैठती थी। 14 सितम्बर 1925 को इस फिल्म का 'प्रेस व्यू' प्रसारित किया गया। 'प्रेस व्यू' के भीतरी पृष्ठों में भारतीय सांस्कृतिक विविधता के चित्रों के साथ वे सभी चित्र थे जो भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता और चर्च मिशनरी के आगमन के कारण भारतीय समाज में आये विकासात्मक प्रक्रिया को दर्शा सकें।[36] संभवतः ब्रिटिश फिल्म उद्योग के संरक्षण के अतिरिक्त 'साम्राज्य फिल्मों' को भारत में प्रोत्साहन के पीछे ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन की यही मंशा काम कर रही थी। और इसीलिए रंगचेरियर समिति के विचार हेतु प्रस्तावों में इस बिन्दु को भी जोडा गया था। तर्क यह था कि अमेरिकी फिल्में राष्ट्रीय हितों को नुकसान पहुचा रही है रंगचेरियर समिति ने अपनी रिपोर्ट के अध्याय छः में इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया था। समिति ने तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा कि, ''यदि सचमुच अमेरिकन फिल्मों का अधिक प्रदर्शन राष्ट्रीय हितों के लिए खतरा है, तब अन्य पश्चिमी फिल्मों के अधिक प्रदर्शन से भी ऐसा ही खतरा है। भारतीय फिल्म उद्योग अभी शैशवास्था में है, ऐसे में यह व्यापक राष्ट्रीय हित में होगा कि जिस तरह से भी हो भारतीय उद्योग को प्रोत्साहित करना चाहिए।[37] वस्तुतः रंगचेरियर समिति की संस्तुतियां भारतीय फिल्म उद्योग के लिए मील के पत्थर से कम नहीं थी। किन्तु आवश्यक तौर पर यह संस्तुतियां ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन के हितों के विपरीत थी। इसीलिए भारत में ब्रिटिश

[35] होम पोलिटिकल, 1925, पत्रावली सं0 243/1925, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
[36] होम पोलिटिकल, 1925, पत्रावली सं0 3/2/11/25, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
[37] सोमेश्वर भौमिक, पृ. 148, 1995.

सरकार ने इन संस्तुतियों की पूरी तरह से उपेक्षा कर दी। जहां एक तरफ इटली जैसे देश, परिपत्र जारी कर, देश के सभी जिलों के थिएटरों को विदेशी फिल्मों की अपेक्षा देशी फिल्मों को वरीयता देने का प्रयास कर रहे थे।[38] वहां दूसरी तरफ भारतीय फिल्म उद्योग प्रतिबन्धों का सामना कर रहा था। 18 जून 1927 को श्रीमान डे महोदय ने विधान परिशद में सरकार से पूछा कि पिछले 12 महीने में क्या किसी फिल्म का प्रदर्शन रोका गया है? यदि ऐसा है तो नाम, कारण तथा फिल्म के मूल देश की जानकारी दें। श्रीमान डे को तत्काल कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि भारत में ब्रिटिश सरकार के अनुसार यह साफ तौर पर प्रान्तीय मसला था।[39]

किन्तु भारत में ब्रिटिश सरकार ने इन आकड़ों को जुटाने के उद्देश्य से प्रान्तीय सरकारों को पत्र लिखे। इस बीच 22 जुलाई 1929 को श्रीमान डे ने पुनः सरकार से पिछले दो वर्ष में प्रतिबन्धित फिल्मों के बारे में जानना चाहा। उधर प्रान्तीय सरकारों ने जो पत्र केन्द्रीय सरकार को उसके पत्र के उत्तर में भेजे थे, उनमें, प्रतिबन्ध के कारणों सहित, प्रतिबन्धित फिल्मों की लम्बी सूची थी। भारत में ब्रिटिश सरकार ने श्रीमान डे को बताया कि पिछले 2 वर्ष में भारत में 47 फिल्में प्रतिबन्धित हुई थीं जिनमें 6 इग्लैड की थीं।[40]

वास्तव में यदि ब्रिटिश प्रान्तों में सेन्सर बोर्डों के बनने से लेकर 1935 तक यदि भारत में प्रतिबन्धित फिल्मों की सूची तैयार की जाय तो यह काफी लम्बी होगी फिर भी इस काल में प्रतिबन्धित प्रमुख फिल्मों की निम्नलिखित सूची के विश्लेषण से नये दृष्टिकोण विकसित किये जा सकते हैं—[41,42,43,4,45]

[38] होम पोलिटिकल, 1928, पत्रावली संख्या 80/XXI, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
[39] होम पोलिटिकल, 1928, पत्रावली संख्या 21/XVI, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
[40] होम पोलिटिकल, 1929, पत्रावली संख्या 22/10, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
[41] होम पोलिटिकल, 1928, पत्रावली संख्या 21/XVI, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
[42] होम पोलिटिकल, 1926, पत्रावली संख्या 168/III, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
[43] होम पोलिटिकल, 1929, पत्रावली संख्या 8/IV, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
[44] अरूणा वासुदेव, पृ. 25–47, 1978.
[45] हैण्ड बुक ऑफ इण्डियन फिल्म इडण्स्ट्री, 1949.

सं0	फिल्म का नाम	आवेदक	निर्माता	मूल देश जिसमें फिल्म बनी	स्वीकृति देने वाला बोर्ड/राज्य	परीक्षण/प्रतिबन्ध का दिनांक/वर्ष	प्रतिबन्धित करने वाले बोर्ड/राज्य	टिप्पणी
1.	द प्रिन्स ऑफ भारत	–	–	–	बम्बई	1921	भारत सचिव द्वारा पूरे देश में प्रतिबन्धित	यूरोपीय भावना को आहत पहुंचने की सम्भावना के कारण
2.	भक्त विदुर			भारत	बम्बई	1921	कराची	राजनैतिक कारणों से प्रतिबन्धित
3.	लैला मजनू	–	–	भारत	–	1922	–	निर्माताओं को चुम्बन दृश्य हटाने को कहा गया
4.	ओरफेन्स ऑफ द स्टॉर्म	–	–	–	बम्बई, मद्रास	1923	बर्मा, बंगाल, पंजाब	डी0डब्लू0ग्रिफिथ्स की फिल्म, राजनैतिक निरूपणों के कारण व्यवहारिक रूप से सभी प्रान्तों में प्रतिबन्धित
5.	रजिया बेगम	–	–	भारत	बम्बई	1924	पंजाब, दिल्ली, संयुक्त प्रान्त, बंगाल, बिहार व उड़ीसा	मुसलमानों के अनैतिक, अभद्र, अपमान जनक चित्रण का आरोप
6.	ब्रोकेन ब्लॉसम	–	–	–	बंगाल	1924	बम्बई, बर्मा, पंजाब, दिल्ली, मद्रास	क्रूरता, वासना, तथा पूर्व पश्चिम में विद्वेष जनक तुलना के कारण
7.	लाइफ ऑफ बुद्धा	–	मदन ऐण्ड कम्पनी	भारत	बंगाल	1925	बर्मा, मद्रास, पंजाब, मध्य प्रान्त, बिहार व उड़ीसा, दिल्ली	बुद्ध के मानवीय निरूपण के कारण बर्मा के बौद्धों का विरोध
8.	बैटलशिप पोटेम्पकिन	–	–	सोवियत रूस	–	1925	–	सर्गई इसेन्टीन्स की फिल्म, स्थापित सरकारों की निर्दयता तानाशाही के प्रति जनता के विद्रोह का चित्रण
9.	गिल्टी कॉन्शस	–	–	अमेरिका	–	1926	–	अशिक्षित सिनेमा दर्शकों की दृष्टि में सरकार की प्रतिष्ठा पर चोट
10.	साइबेरिया	–	–	अमेरिका	–	1926	–	स्थापित सरकार को उखाड़ फेकने का चित्रण

11.	पैशन ऑफ द ईस्ट	पटेल ब्रदर्स	इक्विटेबल पिक्चर्स कॉर्प	डेनमार्क	–	14.12.1927	बम्बई, पंजाब	यूरोपियन लड़की की भारतीय राजकुमार के प्रति आसक्ति, व विवाह का विषय
12.	मून ऑफ इजराइल	एल्फिस्टन थिएटर दिल्ली	–	–	–	जून 1927 से जून 1928 के मध्य	दिल्ली, संयुक्त प्रान्त (1929)	मुसलमान भावनाओं का आहत करने कारण, संयुक्त प्रान्त अधिसूचना संख्या 105/III–373 दिनांक 22 जनवरी 1929
13.	मिसिंग डॉटर्स	युनिवर्सल पिक्चर कार्पोरेशन	सेल्जनिक	अमेरिका	–	13.06.1927	बम्बई	श्वेत दास विषय पर केन्द्रित
14.	ट्रिम्फ ऑफ रैट	–	–	इंग्लैण्ड	बम्बई	1927 13.08.1927	बंगाल, संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, पंजाब	यूरापियन आदमी और औरतों की छवि धूमिल करने का प्रयास तथा निम्न नैतिक्ता के प्रदर्शन के कारण, यूरोपीय अन्डरवर्ल्ड जीवन का प्रदर्शन
15.	प्रिमरोज टाइम	–	–	शंघाई	–	15.07.1927	संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, पंजाब	सेक्स फिल्म
16.	भद्र भामिनी	–	श्री कृष्ण फिल्म कम्पनी	भारत	–	22.02.1927	संयुक्त प्रान्त पंजाब	सेक्स विषय को अनुचित तरीके से प्रस्तुत करने का आरोप
17.	मून ऑफ इजराइल	एल्फिस्टन थिएटर दिल्ली	–	–	–	जून 1927 से जून 1928 के मध्य	दिल्ली, संयुक्त प्रान्त (1929)	मुसलमान भावनाओं का आहत करने कारण, संयुक्त प्रान्त अधिसूचना संख्या 105/III–373 दिनांक 22 जनवरी 1929
18.	किकिंग द जर्म आउट ऑफ जर्मनी	–	–	–	– मध्य	जून 1927 से जून 1928 के	पंजाब	–
19.	द चाइनीज बंग्लो	–	–	इंग्लैण्ड	–	1928	पूरे भारत में प्रतिबन्धित	पश्चिमी औरत और प्राच्य पुरूष के विवाह का प्रश्न।

20.	पैट्रियट	–	श्री रणजीत फिल्म कम्पनी बम्बई	भारत	बम्बई	1930	बिहार व उडीसा अगस्त 1930	अधिसूचना सं. 2184 P.R.–16
21.	द पटेल प्रोसेशन	–	पॉइनियर फिल्म कम्पनी लि0, लाहौर	भारत	–	1930	मद्रास	राजनैतिक कारणों से
22.	सन्त तुलसी दास	–	दिग्वीर सिनेटोन	भारत	–	1934	–	सामाजिक अशान्ति की सम्भावना
23.	द मिल या मंजदूर	–	प्रभात फिल्म कम्पनी	भारत	–	1934	–	मिल मालिक मजदूर संबंध बिगाडने का आरोप

उक्त प्रतिबन्धित फिल्मों की प्रकृति के विश्लेषण से ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा फिल्मों के प्रतिबन्ध हेतु मोटे तौर पर निम्नलिखित आधारों को लक्षित किया जा सकता है।

1– राजनैतिक आधार

2– नैतिकता के प्रश्न

3– साम्प्रदायिकता

4– सामाजिक व्यवस्था के प्रश्न

5– श्रम एवं पूंजी सम्बन्ध

हालांकि ऊपर से देखने में तो ये पांचों आधार अलग–अलग दिखते हैं किन्तु ब्रिटिश प्रशासन के औपनिवेशिक चरित्र को ध्यान में रखते हुए इन आधारों की गहराई से पड़ताल जरूरी है। जहां तक नैतिकता का प्रश्न है, इसे भारत में प्रदर्शित की जाने वाली फिल्मों के सम्बन्ध में पहली बार जब उठाया गया तब यह, आम अशिक्षित भारतीय सिनेमा दर्शकों की दृष्टि में पश्चिमी जीवन शैली, यूरोपीय महिला की गरिमा (शराब पीना, बार में नृत्य, प्राच्य पुरुषों से सम्बन्ध), और इन सबसे जुड़ी श्वेत नस्ल की उच्चता की भावना के क्षरण के भय से जुड़ा हुआ था, और यह भय अन्त तक बना रहा। एक साम्राज्यवादी देश जिसके उपनिवेशों पर शासन की तर्कसंगतता इस बात पर टिकी

हो कि वह और उसका समाज सभ्य और सर्वश्रेष्ठ हैं, ऐसे में आम जनता की दृष्टि में उनके जीवन शैली की निरर्थकता और अश्लीलता का प्रदर्शन जाहिराना तौर पर उनके औपनिवेशक शासन की तर्कसंगतता पर प्रश्न चिन्ह खड़े करता था। इस प्रकार यहां पर आकर नैतिकता का प्रश्न प्रतिबन्ध हेतु औपनिवेशिक प्रशासन के लिये राजनैतिक आधार प्रस्तुत करता था। साम्प्रदायिकता और सामाजिक व्यवस्था के प्रश्न तो सीधे तौर पर कानून व्यवस्था और राजनैतिक तुष्टीकरण से जुड़े हुए थे। यदि हम 1920 से 1930 के मध्य साम्प्रदायिक फिल्मों पर प्रतिबन्ध का एक ''पैटर्न'' तलाशें तो पायेंगे कि विशेषकर 1925 के बाद जब मुस्लिम लीग और कांग्रेस की राहें बिल्कुल जुदा होने लगीं, तब से 'मुसलमान भावनाओं को आहत करने के आरोप' में प्रतिबन्धित होने वाली फिल्मों की संख्या में बढ़ोत्तरी देखी जा सकती है, यहीं नहीं, देश में दलित प्रश्न पर 'कम्युनल अवार्ड' से लेकर पूना पैक्ट तक जो राजनैतिक उथल पुथल हुई थी उस सम्बन्ध में 1934 में आई फिल्म सन्त तुलसीदास से 'निम्न वर्गीय लोगों को हिन्दू मन्दिरों में प्रवेश के प्रयास के दृश्य' पूरी तरह से हटवा देने के पीछे राजनैतिक परिप्रेक्ष्य ढूढ़ें जा सकते हैं।

फिल्मों पर प्रतिबन्ध के अन्य आधार 'श्रम और पूंजी सम्बन्ध' के पीछे भी राजनैतिक कारण ही थे। जब पूंजीवाद और साम्राज्यवाद परस्पर सहायक और नैसर्गिक मित्र की तरह विकास कर रहे हों, ऐसे में किसी एक पर भी चोट दोनों आधारों पर चोट करती थी। 1934 में भारतीय फिल्म कम्पनी अजन्ता सिनेटोन ने प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द्र के उपन्यासों से प्रभावित होकर एक फिल्म, *'द मिल'* या मजदूर बनाई। इस फिल्म को मिल की जीवन शैली व प्रबन्धन का उपहास उड़ाने, तथा जिसके प्रभाव से कामगार और नियोक्ता के सम्बन्धों पर बुरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना के चलते प्रतिबन्धित कर दिया गया। बाद में इस फिल्म का इसके संशोधित संस्करण सेठ की लड़की, के नये नाम से लाया गया। किन्तु इसे पुनः प्रतिबन्धित कर दिया गया। आरोप था कि, पूरी फिल्म में श्रम और पूंजी के संघर्ष को दिखाया गया है यही नहीं, फिल्म में पूंजीवादी वर्ग को श्रमिकों की मेहनत का धन फिजूल खर्ची में उड़ाता हुआ दिखाया गया है। दूसरी तरफ श्रमिकों को गरीबी और जलालत भरा जीवन जीते दिखाना श्रमिकों को सीधे उत्तेजित करने वाला प्रयास

माना गया। अन्ततः यह फिल्म *'दया की देवी'* शीर्षक से प्रदर्शित की गयी किन्तु फिल्म में से वह सभी दृश्य हटा दिये गये जिनमें मिल मालिकों द्वारा मजदूरों को पीटने, आक्रोशित भीड़ के दृश्य, मिल मालिकों द्वारा मजदूरों या उनके नेता को गोली मारने के दृश्य, मिल प्रबन्धकों द्वारा कामगार औरतों के बलात्कार के दृश्य, कामगारों के हड़ताल पर जाने व प्रदर्शन के दृश्य प्रमुख रूप से थे। इसी प्रकार, एक अन्य अमेरिकन फिल्म *'ब्लैक फ्यूरी'* को 1935 में इसलिये प्रतिबन्धित कर दिया गया कि, इसमें औद्योगिक हड़ताल के समय कामगारों द्वारा की गयी सीधी कार्यवाही विशेषतः, विस्फोटकों द्वारा नियोक्ताओं की सम्पत्ति विनष्ट कर देने जैसे दृश्य थे।[46] जाहिर है ऐसी फिल्मों पर प्रतिबन्ध के परोक्ष कारक राजनैतिक ही थे। ऐसे में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा फिल्मों पर प्रतिबन्ध के लिये चाहे जितने आधार प्रस्तुत किये जा रहे हों किन्तु वास्तव में प्रतिबन्ध के पीछे मूल मंशा 'राजनैतिक' ही थी। यही नहीं, राजनैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण फिल्मों पर जिस प्रकार प्रशासन का पूरा दखल दिखता है वह न केवल इस निष्कर्ष की पुष्टि करता है, बल्कि प्रदर्शन के इस माध्यम का ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा औपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिये सम्पूर्ण दोहन के प्रयासों को खोलकर रख देता है। इस बात को ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन की दोतरफा चालों से और भी अधिक समझा जा सकता है। 31 जनवरी 1931 को भारत राज्य सचिव ने भारत में ब्रिटिश सरकार को सम्बोधित करते हुये दो पत्र लिखे। इनमें से एक पत्र भारत में ब्रिटिश सरकार के गृह विभाग को सम्बोधित करते हुये लिखा कि, 'प्रधानमंत्री ने राउण्ड टेबल कॉन्फ्रेन्स की समाप्ति के समय जो भाषण दिया है, वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति में, बोलने और मूक दोनों की रूपों में उसका प्रदर्शन अत्यन्त लाभकारी हो सकता है। दूसरे पत्र में वायसराय को सलाह देते हुये कहा कि, 'इसे सामान्य थियेटरों में 'मूक रूप' में भी चलाने का प्रयास करना चाहिये। यह फिल्म वर्तमान नाजुक समय में प्रचारात्मक लिहाज से अत्यंत महत्वपूर्ण है'।[47] वहीं दूसरी तरफ स्वतंत्रता आन्दोलन तथा महात्मा गांधी से जुड़ी फिल्मों पर पूरी तरह प्रतिबन्धात्मक नियंत्रण लागू किये जा रहे थे।

[46] अरूणा वासुदेव, पृ. 46–47, 1978.

[47] होम पोलिटिकल, 1931, पत्रावली सं0 218/1931, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

यहां तक कि समाचारों के लिये बनायी गयी छोटी–छोटी 'न्यूज रील' भी प्रतिबन्धित की जा रही थी। उदाहरण के तौर पर महात्मा गांधी की ऐतिहासिक दाण्डी यात्रा, महात्मा गांधी लन्दन से वापसी, महात्मा गांधी व अन्य नेताओं के यात्रा वृत्त, महात्मा गांधी का बम्बई में स्वागत, महात्मा गांधी की तीर्थ यात्राओं से वापसी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का 45वां कराची अधिवेशन, बाबू राजेन्द्र प्रसाद का संदेश, पंडित जवाहर लाल नेहरू का संदेश आदि को प्रतिबन्धित कर दिया गया था।[48] फिल्म *'चन्द्रराव मोरे'* को प्रदर्शन की अनुमति तब तक प्राप्त नहीं हुयी जब तक फिल्म से 'स्वतंत्रता' शब्द हटा नहीं लिया गया। स्वतंत्रता, स्वराज और ध्वज आदि अमूमन अभिवेचित होने वाले शब्द थे।[49] किन्तु ऐसे प्रतिबन्धों के बावजूद, और इन प्रतिबन्धों के बीच से जो सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है, वह यह कि क्या इन प्रतिबन्धों के कारण या भय से भारतीय फिल्मकारों की, फिल्मों के माध्यम से स्वतंत्रता आन्दोलन में सहभागिता की डोर टूट गयी? इसका उत्तर न केवल अनिवार्य रूप से 'नहीं' में दिया जा सकता है बल्कि, यह दृढ़ता पूर्वक कहा जा सकता है कि, समय (सवाक् फिल्मों के उद्भव) के साथ स्वतंत्रता आन्दोलन और फिल्मों के बीच की कड़ी मजबूत होती गयी। इसके तर्क के पीछे 'सोने की चिड़िया' (1934, कृष्णा मूवी टोन) जैसी फिल्मों के प्रबल उदाहरण है जिसमें एक स्थान पर अभिनेता अपने हृदय के उदगार व्यक्त करते हुए कहता है –

"हां! निश्चित रूप से अपने देश की सेवा कर पाना किसी दुर्लभ अवसर से कम नहीं है, इसके लिये हमें अपने धन और वैभव का भी बलिदान कर देना चाहिये। ... अपने देश के लिये बलिदान हो जाना अपना लक्ष्य होना चाहिए। इस तरह न जीने से अच्छा, इस तरह जीने के प्रयास में मर जाना है।"[50]

[48] अरूणा वासुदेव, पृ. 46–47, 1978.

[49] अरूणा वासुदेव, पृ. 27, 1978.

[50] अरूणा वासुदेव पृ. 45, 1978.

संदर्भ

प्राथमिक श्रोत

क. राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

1. होम, पोलिटिकल, पार्ट बी, वर्ष–जून 1916, पत्रावली सं0–416–420, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
2. होम, पोलिटिकल, पार्ट बी, जनवरी 1918, पत्रावली सं0–46–47, एवं के. डब्ल्यू, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
3. होम, पोलिटिकल, 1926, पत्रावली सं0–168/III, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
4. होम, पोलिटिकल, 1922, पत्रावली सं0–147/VII, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
5. होम, पोलिटिकल, 1925 ,पत्रावली सं0–207, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
6. होम, पोलिटिकल, 1927 ,पत्रावली सं0–48/VIII, एवं के. डब्लू., राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
7. होम, पोलिटिकल, 1928, पत्रावली सं0–80/XXI, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
8. होम पोलिटिकल, 1925, पत्रावली सं0 243/1925, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
9. होम पोलिटिकल, 1925, पत्रावली सं0 3/2/11/25, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
10. होम पोलिटिकल, 1928, पत्रावली सं0 21/XVI राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
11. होम पोलिटिकल, 1929, पत्रावली सं0 22/10, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
12. होम पोलिटिकल, 1929, पत्रावली सं0 8/IV राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
13. होम पोलिटिकल, 1931, पत्रावली सं0 –218/1931, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

ख– राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ।

1. सामान्य प्रशासन विभाग, पत्रावली सं0–152, राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ।

ग– राज्य अभिलेखागार, बिहार।

1. पोलिटिकल स्पेशल, 1926 ,पत्रावली सं0–257, राज्य अभिलेखागार, बिहार।

द्वितीयक श्रोत

पुस्तक

1. एरिक हॉब्सबॉम, अनुवादक–प्रकाश दीक्षित, साम्राज्य का युग, 2009, संवाद प्रकाशन, मेरठ।
2. जीनिन वुड्स, विजन ऑफ एम्पायर एण्ड अदर इमेजनिंग, 2011, पीटरलैंग एजी, इन्टरनेशल पब्लिशर, बर्न, स्विटजरलैंड।
3. अरुणा वासुदेव, लिबर्टी एण्ड लाइसेंस इन इन्डियन सिनेमा, 1978, विकास पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
4. बी. डी. गर्ग, फ्राम राज टू स्वराज : द नान फिक्शन फिल्म ऑफ इन्डिया, 2007, पैन्विन बुक्स, भारत।
5. गुलजार, गोविन्द निहलानी, सेबल चटर्जी, इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इन्डियन सिनेमा, 2003, इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका इन्डिया प्राइवेट लि., नई दिल्ली।
6. महेन्द्र मित्तल, भारतीय चलचित्र, 1975, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली।
7. हैन्ड बुक ऑफ इण्डियन फिल्म इन्डस्ट्री, 1949, मोशन पिक्चर सोसाइटी ऑफ इण्डिया, बम्बई।
8. तेजस्विनी गन्ती, बॉलीवुड : ए गाइड बुक टु पॉपुलर हिन्दी सिनेमा, 2004, रुटलेज न्युयार्क, लन्दन।
9. आशीश राजाध्यक्ष, पॉल विलर्मेन, इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इन्डियन सिनेमा, 1999, ब्रिटिश फिल्म इंस्टीट्यूट, यू. के. ।
10. सोमेश्वर भौमिक, इन्डियन सिनेमा कलोनियल काउन्टर्स, 1995, पेपाइरस, कलकत्ता।